R.N.I.- UP-HIN/2001/3996
ISSN- 2581-6128

स्थापन दिवस के 24वें वर्ष में प्रवेश

संयम • संस्कार • सन्तुलन

शहर समता

(हिंदी साप्ताहिक)

www.shaharsamta.com

शोध पत्र

'कर्मक्षेत्र रणभूमि यही है, मानव हो तुम कर्म करो।
कर्म से कभी विमुख न रहना, मन में यह संकल्प करो।'-
उमेश श्रीवास्तव

संस्थापकः स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 श्रीमती साधना श्रीवास्तव
सम्पादकः उमेश चन्द्र श्रीवास्तव

रेखा श्रीवास्तव पर विशेषांक

वर्ष 24 | अंक 48 | रविवार, इलाहाबाद, 27 अप्रैल 2025 | पृष्ठ 4 | विशेषांक मूल्यः 3 रू0

संपादकीय

इस बार रेखा श्रीवास्तव

कानपुर में रची-बसी हैं ,
रेखा श्रीवास्तव है नाम ।
कविता लघु-कथा, कहानी लिखतीं ,
यही है इनका काम ।
बहुत ही सुखदाई है ,
इसीलिए इनका मिलता है ।
सावित्री देवी सम्मान ,
बहुत बधाई है ।

तो बात हो रही है कानपुर में रची बसी रेखा श्रीवास्तव की। साहित्यिक वातावरण में पली-बढ़ी रेखा का लिखने पढ़ने के

प्रति रुझान बचपन से ही था । 10 वर्ष की अवस्था से ही इन्होंने लेखन क्षेत्र में पदार्पण कर लिया था। बाद में साहित्य की हर विधा पर कवियत्री रेखा श्रीवास्तव ने कलम चलाई। इनकी कविता की बानगी देखिए

पहली बानगी

ओ गांधारी अब तो जागो !
ओ गांधारी
अब तो जागो,
जानबूझ कर
मत बाँधो आँखों पर पट्टी,
सच को अब देखने का
साहस करना होगा।

दूरसरी बानगी

इस सफर में
कुछ खो गया, या छूट गया,
हर तरफ उँगली उठी -
'दोषी तुम हो,
ध्यान कहाँ रहता है?
कहाँ खोई रहती हो?

तीसरी बानगी

उस मकान से
कभी आतीं नहीं
ऐसी आवाजें
जिनमें खुशियों की हो खनखनाहट।
उसे मकान में कभी आती नहीं

अप्रैल माह का सावित्री देवी स्मृति सम्मान 2025 देते हुए संस्था प्रसन्न है । संस्था आपके सुंदर भविष्य की कामना करता है । विशेषांक कैसा लगा, प्रतिक्रिया जरूर दें ।

अंत में

दुख सुख का यह सागर पूरी दुनिया है ।
फिर भी प्यारी सुंदर लगती यह दुनिया है ।

उमेश श्रीवास्तव

आत्मकथ्य

रेखा श्रीवास्तव की कलम से

पढ़ना मेरे परिवार में एक व्यसन की तरह से था. पापा , माँऔर दादी सभी पढ़ने के शौक़ीन थे. सबसे बड़ी बात ये थी कि मेरी दादी पढ़ लेतीथी लेकिन अगर पृष्ठ शेष हो तो उसे नहीं ढूढ़ पाती थी हमसे कहती कि इसकापृष्ठ ढूढ़ दो. मेरे पापा के एक मित्र के पास पत्रिकाओं की एजेंसी थी सो वेसारी पत्रिकाएं मुफ्त में दिया करते थे और उस समय जो आज भी मेरी स्मृति मेंहैं - साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, सारिका, माया, मनोरमा,कादम्बिनी, नवनीत, हिंदी डाइजेस्ट, साथी, अरुण थी जो साहित्यिक और स्तरीय पत्रिकाएंथी. फिल्मी दुनियाँ में पहले सुचित्रा (जो बाद में 'माधुरी' के नाम सेआई), फिल्मी कलियाँ, सुषमा, रंगभूमि, फिल्मफेयर थी, जो मुझे याद हैं. इनकोचाटते चाटते अच्छे खासे ज्ञानी हो गए थे. अपनी उम्र से अधिक समझदार औरदुनियादार. वैसे पढ़ना तो पता था की खानदानी रोग था, लेकिन लेखन पापा सेमिला और तारीफ की बात ये हैं कि हमें ये बात बहुत बाद में पता चली , लेकिनपापा का लिखा हुआ कभी पढ़ने को नहीं मिला।

मेरी लेखनी चली

जब मैं 10 साल की थी. मेरी पहली कहानी 'ऋण ' दैनिक जागरण के बाल जगत स्तम्भ में छपी थी, गरिमियों कि छुट्टी मेंहम सभी ननिहाल चले जाते थे. वहाँ से लौट कर आये तो पापा ने मुझे वह अखबारदिया और मेरी पीठ थपथपाई क्योंकि ये काम मैं बिना बताये ही किया करती थी.फिर मुझे भी बहुत खुशी हुई. फिर इसी तरह से कई कहानियां निकलीं. जिनमेंशेष स्वतंत्रता सेनानियों पर अधिक थी, जिनमें उसके महत्वपूर्ण संस्मरणमैंने बाल जगत के लिए ही लिखे थे.

उन दिनों आज की तरह से कंप्यूटर तो थे नहीं , सोऑरकुट, फेसबुक या अन्य सोशल मीडिया के साधन होते ही नहीं थे . हाँ पत्र हीसबसे बड़े साधन थे. मेरे यहाँ उस समय 'नेशनल हेराल्ड' पेपर आता था और उसमेंएक कालम होता था 'पेन फ्रेंड' का उसमें रूचि आने लगी और उसे ही मेरी एकफ्रेंड बनी 'प्रतिमा श्रीवास्तव' जो कानपुर की थी. मेरे पत्रों के लिखने केढंग से उसने मुझसे कहा कि 'तुम कविता लिखो, तुम कविता लिख सकती हो', वह आजभी मेरी बहुत अच्छी मित्र है और लेखिका भी है. इस विधा के बारे में मैंनेपहले नहीं सोचा था. फिर लिखने की कोशिश की. और लिख लिख कर डायरी में इकट्ठाकरती जाती. वह हर साल दिसंबर कि छुट्टी में उरई मेरे पास जाती थी. फिरउनमें करेक्शन करती.

कभी फिल्मीपत्रिका के लेख और कभी कोई और आलेख चर्चा का विषय बनाये ही था. लेखन में समाज और अन्याय के प्रति आक्रोश शुरू से ही था और मेरी सारी रचनाएँ ऐसी हीहोती थी. मैं कोई बहुत बड़ी तो थी नहीं और न ही बड़े शहर की रहने वाली एककस्बा हैं (अब नहीं रहा क़स्बा) सब एक दूसरे को जानने वाले , फिर मेरेपापा उरई में सम्मानित व्यक्तियों में थे और भाई साहब भी B .Sc . करके इंटरकॉलेज में अध्यापक हो गए थे. वह भी बड़े सिद्धांतवादी थे क्या, आज भीवैसे ही हैं? उन्हें कोई बात गलत पता चलती तो कहते - 'रेखा इस पर ऐसा लिखोकि पढ़ कर ये ऐसे काम करना भूल जाए.'

जो आलेख मेरे को लगते कि कोई वबाल खड़ा हो सकता है वह मैं 'भावना' नामसे लिखने लगी. सिर्फ मेरी बहनों बाकी किसी को नहीं. उस समय कुछ विषय ऐसे थेजिनपर सबके सामने बात नहीं होती थी और उन पर लिखना भी अच्छा नहीं समझती थी . इस लिए ऐसे हॉट विषय पर उस समय ये हॉट कि श्रेणी में ही आते थे.

उसी समय भोपाल के प्रतिष्ठित लेखक जगदीश किंजल्क से संपर्क हुआ. उनहोने एक परिचर्चा आयोजित की. 'विवाहमें वैदिक रीति अधिक उचित या अन्य' ऐसा ही कुछ विषय था . मैंने वैदिक रीतिका समर्थन किया और आज भी करती हूँ, वैदिक मन्त्रों की महत्ता को मैं बहुतमानती हूँ और इसको अनुभूत किया है. बस उसका छपना था की शादी के प्रस्तावआने शुरू हो गए. हर दूसरे पत्र में प्रस्ताव. हम भाई बहन मजे ले लेकर पढ़तेऔर फिर रख देते.

अब तो मोहल्लेवालों को भी चिंता होने लगी की लड़की के नाम इतने सारे खत आते हैं, जरूरकुछ गड़बड़ है इसकी शादी हो जानी चाहिए. अब मोहल्ले की महिलाओं ने आकर मेरीमाँ को समझाना शुरू किया कि अगर कहीं बदनाम हो गयी तो कोई शादी भी नहींकरेगा. कहीं कुंवारी लड़कियों के नाम इतने खत आते हैं. मेरे घर में भी तोहैं, रिश्तेदारों के भी इनके ही नाम आते हैं. मैं उस मंडली में कोई रूचिनहीं रखती थी. हाँ माँ ने कहा तो चाय नाश्ता बना कर दे दिया . मेरी छोटीबहने ये काम करती थी. पहले सुनती और फिर जाकर मुझे बताती. मेरी माँ भी गाँवकी थी फिर इन सबसे उनका कोई वास्ता नहीं था. फिर एक दिन ऐलान हुआ कि येलिखना विखना बंद करो. ये सब अपने घर में जाकर करना. वो ऐसे कह रही थी, वोऐसे कहती है. मुझे इज्जत से शादी कर लेने दो मेरी अभी और भी लड़कियाँ हैं.मेरे बाद मेरी 3 बहने छोटी थी. बात पापा के पास तक गयी क्योंकि माँ केहथियार तो वही थे.

पापा मेरेप्रबुद्ध व्यक्ति थे और वे खुद भी लिखते थे. उन्होंने माँ को समझाया की ऐसानहीं होता है, ये औरतें तो बिना पढ़ी लिखी हैं तो क्या तुम भी ऐसे हीकरोगी? वो जो कर रही है उसको करने दो. शादी भी हो जायेगी अभी उसको पढ़ने दो.

इससमय तक मेरे आलेख मनोरमा में छपने लगे थे. मनोरमा ऐसी पत्रिका थी किमहिलाओं की पत्रिका करीब सभी के घर तो नहीं आती लेकिन हाँ आम घरों तक आतीही थी और उसमें लिखा हुआ सब पढ़ते थे. उस समय भी नारी, सामाजिक मुद्दे हीमेरे लेखन के विषय थे.

मनोरमा में 'आपकेपत्र' नाम से कालम आता था और मैं उसी में अपनी बात कह पाती थी , सब उसकोचाव से पढ़ते थे. मेरे एक बहुत दूर के रिश्तेदार थे, उनकी तीन बहुएं जलकर मरी और दो बेटों की. एक दिन बताने चली आई कि उसकी शादी वाले आ रहे हैं लोगभड़का देते हैं, अगर हमारे पास पैसा है तो हम अभी चार शादियाँ और करलेंगे. मुझे सुनकर बहुत बुरा लगा कि एक तो जला कर मार डाला और फिर येतुर्रा. मैंने उनको लक्ष्य करके मनोरमा में भेज दिया और जब प्रकाशित हो गयातो समझा ही जा सकता कि वो दनदनाती हुई मेरे घर आ गयी कि कैसे रिश्तेदारहो तुम ? बात को ऐसे फैलाया जाता है, हम भी देख लेंगे अभी तुम्हें 4-4 लड़कियों की शादी करनी है. मेरी माँ तो बैठ कर रोने लगी , मुझे भी डर लगाकि कहीं पापा कुछ न कहें. भाई साहब आये तो पता चला. मैंने अन्दर कमरे मेंजाकर लेट गयी. मुझे बुलाया गया. माँ इस आशा में कि भाई साहब अब मुझे डांटलगायेंगे बिल्कुल एलर्ट बैठ गयी.

...शेष पृष्ठ 2 पर

पृष्ठ 1 का शेष...

आत्मकथ्य...

'हाँ ,रेखा किसपर लिखा था तुमने?'

'उन्हीं की बहुयों के जलाने पर लिखा था.' मैं डांट पड़ने के डर से बहुत धीमे धीमे बोल रही थी.

'ये तो तुमने बहुत अच्छा किया ,ऐसे लोगों को चौराहे पर खड़ा करके जूते भी लगाये जाएँ तो कम है.'

मेरी तो आँखे चमक उठी और माँ शांत हो गयीं की अब तो ये मानने वाली नहीं. पापा और भाई साहब की शह मिल रही है.

मेराकाम अपनी गति से चलने लगा. अब मुझे किसी कि भी परवाह नहीं थी. मेरीअभिव्यक्ति और विचारधारा वैसे ही आज भी है, आदर्शों और सिद्धांतों पर चलानेवाली अगर कुछ गलत है तो गलत है चाहे उसके करने वाला मेरा अपना खास हीक्यों न हो. मेरी लेखनी के शिकार मेरे अपने बहुत करीबी भी बने और मैंनेबेबाकी से ही लिखा. वह बात और है कि उस बात का उलाहना मेरे पापा या भाईसाहब को सुनने को मिला हो. मिलता रहता था और वे अपने ढंग से उससे निपटतेरहते थे. बस मुझे बता देते कि आज तुम्हारे इस लिखने से ये हुआ.

इन्हीं के साथ एक कटु अनुभव ये भी हुआ कि मेरी एक शिक्षिका थी अबरिटायर हो चुकी थी लेकिन उन्होंने मुझे बचपन में पढ़ाया था और हम उनको 'चाचीबहनजी ' कहते थे. घर से बहुत दूर नहीं रहती थी. पता चला कि उनकी पुत्रवधुउनके साथ बहुत बुरा व्यवहार करती है. सबसे बुरी बात जो मेरे दिल को ल गी वोये थी. कि चाची बहनजी हमेशा एकदम सफेद साड़ी पहनती थी. अब सुना कि बहू अपनेकपड़े धो कर उससे निकले साबुन में कहती कि अब अपनी साड़ी इसमें धो लेना.हो सकता है कि ये आपको कहानी लगती हो लेकिन ऐसा ही था और इससे भी बहुत अधिकसुना. मेरा मन तो रो दिया. हमेशा स्मार्ट रहने वाली मेरी वो शिक्षिकाआजइस हाल में. फिर क्या था मेरी वेदना बह निकली और निकल कर इस रूप में आ गयी.

मनोरमा आई नहीं कि ये खोज शुरू हो गयी कि ये रेखा श्रीवास्तवहै कौन? मेरा घर बहुत दूर नहीं था और सब आपस में परिचित भी थे. इत्तेफाक सेउनके पुत्र मेरे भाई साहब के कालेज में ही टीचर थे. कैर उनको पता चल गयाकि ये रेखा श्रीवास्तव है कौन? फोटो उसमें बहुत साफ नहीं छपा था फिर भी पताचल ना कोई बड़ी बात नहीं थी . फिर क्या था? एक दिन कॉलेज में स्टाफ रूम मेंभाई साहब से बोले - 'विनोद तुम्हारी सिस्टर ने ये ठीक नहीं किया?'

'क्या ठीक नहीं किया? क्या किया है उसने? ' भाई साहब को पता था लेकिन उन्होंने भी नाटक किया.

'यही जो मनोरमा में निकाला है, कितनी बदनामी हो रही है?' वे गुस्से में थे.

उसमें उनका नाम कहीं भी नहीं दिया था. लेकिन कहानी अपनी हो तो सबको पता चल जाता है.

'देखो, मेरी सिस्टर लिखती है, और वह क्या लिखती है इससे मेरा कोई सरोकार नहीं. वहलिखने के लिए फ्री है. अगर तुम्हें लगता है तो जाकर उस पर मानहानि कामुकदमा कर दो.' भाई साहब ने दो टूक जबाव दिया था.

अब तो स्टाफ रूम में सभी टीचर ' अरे विनोद रेखा ने क्यालिखा है? यहाँ लाओ हम भी पढ़ें?' लोगों को तो मजा आता है किसी कि बात काबतंगड़ बनाने. भाई साहब ने आकर मुझे बताया मैंने कहा - ' ये स्टाफ रूम मेंनहीं जायेगी , अगर उनमें जरा सी भी गैरत होगी तो वे अपने व्यवहार कोसुधारने का प्रयास करेंगे.'

मेरे रोज के लेखन मेंऐसी ही समस्याएँ और उससे जुड़ी कहानियां ही थी. लेकिन ये अवश्य था किइससे लोगों पर प्रभाव पड़ता था. बड़ा रुतबा रहता था और साथ ही ये भी ऐसीलड़की से शादी नहीं करेंगे ये तो घर कि बाते बाहर भेज देगी. खैर ये तोमेरी चिंता का विषय नहीं था. मेरे पापा का एक वादा था कि जब तक मैं पासहोती रहूंगी वे मुझे पढ़ने से नहीं मना करेंगे. मैं एक श ." .कर चुकी थीऔर दूसरे में कर रही थी. कविताओं के ढेर हो चुके थे लेकिन कहीं भेजने किहिम्मत नहीं होती थी या ये कहो कि साहस नहीं कर पा रही थी. तभी सोचा किक्यों न कादम्बिनी में भेजा जाय और मैंने अपनी एक कविता के साथ फोटो रख करभेज दी. ये काम मैं किसी को बाद में बताती थी जब कि स्वीकृति आ जाती . पताचला कि कादम्बिनी से कविता इस आदेश के साथ लौटकर आ गयी कि आप अपनी 2-3कविताएँ और साथ ही फोटो ग्लोसी पेपर पर बनवा कर भेजे. मुझे तो पता नहीं थाकि ये ग्लोसी पेपर होता क्या है? फिर पापा से बोला तो पापा ने बनवा कर दी.

1975 में मेरी पहली कविता प्रकाशित हुई. मैंनेपहली कविता रेखा 'भावना' के नाम से लिखी थी. मेरी सहेली प्रतिमा ने यहीनाम सुझाया था . पहले हम यही सोचा करते थे कि जब कविता लिखते हैं तो पीछेकुछ उपनाम लगते हैं. मेरे पापा 'सुमन' के नाम से लिखते थे. तारीफ की बात येहै कि मैंने आज तक कभी अपने पापा का लिख हुआ नहीं पढ़ा. तब जिस तरह से मैंलिखती थी. आज भी मुझे ल गता है कि मेरी भाषा और शैली और सोच में कहीं भीबदलाव नहीं हुआ है.

इसकविता के प्रकाशित होने के साथ ही फिर फैन मेल का सिलसिला शुरू हो गयाक्योंकि मनोरमा में पता प्रकाशित नहीं होता था और इससे सिर्फ नाम और शहर हीरहता था. उससे फैन मेल का खतरा कम होता था. अब फिर वही सिलसिला शुरू होगया . इसमें प्रबुद्ध और संवेदनशील लोगों के पत्र अधिक होते थे. कईपत्रिकाओं के कविता भेजने के प्रस्ताव और फिर मित्रता और शादी के प्रस्तावआने बहुत ही मामूली बात थी. हम सभी भाई बहन इस पत्रों को मजे लेकर पढ़ा करतेथे. इससे मेरी माँ को बहुत उलझन होती थी लेकिन कहती कुछ न थी. एकप्रतिष्ठित पत्रिका में स्वरचित रचना को स्थान मिलना मेरे लिए बहुत बड़ीउपलब्धि थी. अब कदम आगे बढ़ाने की सोची तो धर्मयुग और साप्ताहिक हिंदुस्तानपर हाथ आजमाना शुरू किया. इस काम में किसी को हमराज नहीं बनाती थी, सिर्फ मेरी छोटी बहन थी जिससे मैं अपने लैटर पोस्ट करवाती थी . उसको सब पतारहता कि मैं क्या कहाँ भेज रही हूँ? इस दिशा में मुझे न कोई गाइड करनेवाला था और न ही मुझे कोई नियम क़ानून पता थे. बस हाथ से लिखा (राइटिंगमेरी अच्छी थी) और लिफाफे में रख कर पोस्ट कर दिया. फिर भूल गयी जबस्वीकृति आ गयी तो समझ गए कि अब छप जाएगा. मेरी सबसे पहली कमाई मुझे मनोरमासे हुई थी तब एक पत्र के 25 रुपये पारिश्रमिक मिलता था. और उस समय इसकीबहुत कीमत होती थी. मैं अपने लिखे हुए को भेजने , मित्रों और भाइयों कोपत्र लिखने सब का खर्चा खुद उठने में सक्षम थी.

उसी समय साप्ताहिक हिंदुस्तान में 'टूटी हुईजिन्दगी' नाम से महिला पृष्ठ पर एक श्रंखला शुरू की गयी. मैंने भी लिख करभेज दिया और इत्तेफाक से वह स्वीकृत हो गया और छप कर आ गया. ये सच कहानी परही आधारित होती थी और कहानी मेरे एक खास रिश्तेदार , जो कि मेरे घर अक्सरआते रहते थे, पर आधारित थी. साप्ताहिक हिंदुस्तान आया ही था और चूंकिउसमें मेरी कहानी थी तो बाहर कमरे में रखा था. इतने में वे आ गए और मुझेकाटो तो खून नहीं क्योंकि मेज पर पत्रिका रखी है और अगर उन्होंने उठ करकहानी पढ़ ली तो क्या होगा? आखिर मैं भी इंसान थी. डर लगा और मैंने छोटी बहनसे कहा कि तुम वहीं रहना जैसे ही साप्ताहिक ये मेज पर वापस रखें तुरंत लेआना. खैर ऐसा कुछ नहीं हुआ उन्होंने उल ट पलट कर रह दिया और मैं चिंता सेमुक्त हुई. जब मैंने ये बात माँ को बतलाई तो माँ लगी डांटने- मैंने कहा थाकि ये काम मत करो , बेकार कि बुराई हो जायेगी. उनका भी कहना सही थाक्योंकि भले हम गलत करें लेकिन अगर किसी ने कह दिया तो वह हमारा सबसे बड़ादुश्मन होता है.

मैंने कहा बुराई हुई तो नहीं न, बस ऐसे ही डर कर रहे तो लिख चुके हम तो.इसके बाद और दो कहानियां इस कालम में प्रकाशित हुई . अब मैं स्थापित लेखकबन चुकी थी. और साप्ताहिक में छपना आसन काम नहीं था लेकिन मैंने तो कुछकिया भी नहीं. यहाँ तक कि मैं संपादक के नाम उसके साथ पत्र लिख कर भी नहींरखती थी. इस कहानी से मुझे उस समय 125 रुपये का चैक मिला. मेरा बैंक मेंकोई अकाउंट तो था नहीं, अभी तक तो मनी आर्डर से पैसे आ जाते थे. कभी जरूरतही नहीं पड़ी. पहली बार मैंने बैंक में अकाउंट खुलवाया. और तारीफ की बात येथी कि मैं उस बैंक में न उस समय न आज तक कभी गयी ही नहीं. अकाउंट खुल गया, पैसे आ गए और निकलवा भी लिए. मैंने बैंक की शक्ल नहीं देखी. इतनी जानपहचानथी कि जाने की जरूरत नहीं पड़ी .

सामाजिक रूढ़ियों, नारी शोषण , अंधविश्वास और अन्याय केप्रति ही मैंने हमेशा लिखा . कौन क्या कहता है? इसके बारे में मैंने कभीनहीं सोचा. लेकिन हाँ कहीं ये बात सामने आई कि लड़की लिखती है तो कहीं घरकी बातें बाहर न चली जाएँ. मैंने सुन लिया और सोचा कि ऐसे लोग जरूर कुछ गलतकरते होंगे तभी तो उन्हें घर की बातें बाहर जाने का डर है. वे मेरी सोचके अनुरुप नहीं हो सकते और इससे पहले वे मेरे पापा और भाई साहब के द्वारालिस्ट से हटा दिए जाते .

मेरी शादी कि बात मेरे एक रिश्तेदारने अपने ही रिश्तेदार के साथ चलाई. उन लोगों को पता चला कि लड़की लिखती हैऔर पत्रिकाओं में छपता है. उनके लिए ये नयी बात थी , खैर वह तैयार नहींहुए, मेरे भाई साहब सुबह वापस आने वाले थे कि रात में लड़का अपने टूर सेवापस आ गया , रात में भाई साहब से बात करता रहा और जब लड़के को पता चलाकि ऐसा है तो भाई साहब तो सुबह वापस आ गए, लेकिन उसने घोषणा कर दी कि जबशादी करनी ही है तो इसी लड़की से क्यों नहीं? घर वाले चाहते थे कि कहींइकलौती लड़की से करें जहाँ दान दहेज़ और मकान भी मिल जाए. और भी कईप्रस्ताव थे उनके पास. अब अगर लड़का ही अड़ जाए तो कोई क्या करे? लड़के नेअपने रिश्तेदार के द्वारा कहलाया कि फिर से आये बात करने. भाई साहब फिरपहुंचे तो उनके बड़े भाई और पिताजी ने बहुत नखरे दिखाए आखिर रात 1 बजे बातबनी और भाई साहब शगुन करके चले आये. मेरे लिखने से प्रभावित हो कर हीइन्होने शादी की जिद पकड़ी थी और आज वही मेरे पतिदेव आदित्य जी हैं.

खैरशादी के तय होने तक सब सही रहा, मेरे प्रकाशन को सबसे अधिक गति 1978-79में ही मिली. खूब लिख और प्रकाशित भी हुआ. पर शादी एक ऐसा बैरियर साबित हुआकि गति को विराम लग गया. कुछ तो नए घर में आकर अपने को समायोजित करने कासमय था और कुछ विरोध के बाद भी शादी होने का आक्रोश था. उसके बीच जीना औरखुद को स्थापित करना भी एक बड़ा काम था.

खैर कलम तो उठा कर रख दी, करीब एक साल बाद अपनी सारी पूँजी मैं उरईसे उठा कर कानपुर ले आई. जिनमें मेरी प्रकाशित रचनाएँ थी , सभी पत्रिकाएंऔर भी जिनमें कभी पूरा उपन्यास छपा था, कहानी विशेषांक थे, कुछ ऐसेधारावाहिक थी - आज दुर्लभ है. - ललिता शात्री का : मेरे पति मेरे देवता ' नाम से प्रकाशित पूरी गाथा. राजेंद्र राव की प्रस्तुति - सूली ऊपर सेज पियाकी / कोयला भाई न राख . सभी मेरी अनमोल निधि थी. इस के साथ ही प्रकाशित औरअप्रकाशित सभी रचनाएँ भी थी.

एकबार मैं कुछ दिनों के लिए बाहर गयी और वो सारी रद्दी में बेच दी गयीं. जबमैं वापस आई तो मेरी अलमारी खाली थी. पूछा तो पता चला की रद्दी वाले को बेचदिया. बेकार का कूड़ा इकठ्ठा था. अब मैं किससे क्या कहती? कैसे समझाती किवो मेरी जीवन की अनमोल निधि थी - जो एक बार लिख जाता है वो दुबारा नहींलिखा जाता. ये मेरी जिन्दगी का सबसे बड़ा सदमा था . मैं उस दिन बहुत रोई थीऔर पतिदेव सांत्वना देते रहे किन्तु हो कुछ भी नहीं सकता था.

घर में कुछ विद्वेषक भी बन गए. सुनने को मिल जाता कि अगरये लिख सकती है तो तुम क्यों नहीं? तुम भी कविता लिख करो आखिर तुमने तोहिंदी में M.A. किया है. पतिदेव तो थे टूरिंग जॉब वाले सो हफ्ते में 2 या3 दिन उनके बाहर होते और तब सारे काम के बाद मैं अपने लेखन के लग जाती थी.लेकिन वे बस लिख भर पाती उनको फिर से लिख कर भेजने का काम नहीं कर पातीथी. फिर भी कभी कभी तो कर ही लेती थी.

अब घर में यह भी सुनाई देने लगा की क्या ये लिखने विखने की हवा फैलारखी थी. छपा तो आज तक कुछ भी नहीं. क्या शादी के लिए हवा उड़ा रखी थी. समझाजा सकता है कि इस तरह के व्यंग्य कोई नई बात नहीं होती.

इत्तेफाक से उसी महीने 'सरिता' में मेरा लेख छपा सो लाकर मैंने पत्रिका उनके सामने रख दी. जब पढ़ा तो शांत हो गए.

इसकेबाद मुझे आई आई टी में नौकरी का अवसर मिला. आरम्भ में तो मानविकी विभागमें समाजशात्र में मिला किन्तु वहाँ सिर्फ एक वर्ष का अनुबंध था. वहाँ परसभी विषयों के प्रोफेसरों से मेरी जान पहचान हो गयी थी. उनमें ही थी डॉ.बी. एन . पटनायक जो अंग्रेजी भाषा में थे और वे इस बात से वाकिफ हुए कि मैंलिखती हूँ और हिंदी का अच्छा ज्ञान है . वह कंप्यूटर साइंस विभाग में आरंभहोने जा रहे 'मशीन अनुवाद' परियोजना में भाषाविज्ञ की हैसियत से सहयोगीथी. उन्होंने ही मुझे यहाँ आने का आमंत्रण दिया और फिर इससे जुड़ी हूँ तोये सफर जारी है 1987 से लेकर आज तक और आज हम गूगल और अन्य अनुवाद के साधनको टक्कर देने के लिए तैयार हैं . आज भी इसको और सटीक और ग्राह्य अनुवादप्राप्त करने के लिए प्रयास कर रहे हैं. ये वह क्षेत्र है जो कभी खत्मनहीं होने वाला. और ये भी मेरे लिए मेरे लेखन की ही देन है.

बहुत वर्षों तक मैं यहाँ भी गुमनाम हीरही, सिर्फ मेरी सहयोगी जो आरम्भ से ही मेरे साथ रही . उनको पता था की मैंलिखती हूँ और मेरी डायरियां यहाँ पर रही रहती थी. जिनमें कविताएँ और आलेखहोते थे. घर में लिखने का समय कम ही मिल पाता था.

आईआई टी में भी सितम्बर माह में हिंदी सप्ताह मनाया जाता है और उसमेंविभिन्न प्रतियोगिताएं भी हुआ करती हैं. मैंने उसमें कभी भाग नहीं लिया जबकि मेरी सहेलियां जो यहाँ पर मेरे साथ थी कई बार कहा. एक बार तो वह पीछेही पड़ गयी और उसने 2005 में मेरी डायरी से कविता निकाल कर हिंदी प्रकोष्ठमें भेज दी. वहाँ से मेल आ गयी कि आपको इस लेक्चर हाल में पहुंचना है.

दरअसल बात यह है कि मैं इतने लम्बे समय से हूँयहाँ लेकिन पूरी आई आई टी के परिसर से मेरा सरोकार कभी नहीं रहा. मैं आकरअपने कमरे में और बस जाते समय ही निकलती हूँ.

एक लड़के ने मुझे उस लेक्चर हाल तक पहुँचाया.और यहाँ पर मैंने पहली बार अपने लेखन की प्रस्तुति की. मेरी कविता थी -
' पूजिता या तिरस्कृता '

सीता पूजिता
क्यों?
मौन, नीरव, ओठों को सिये
सजल नयनों से
चुपचाप जीती रही।
दुर्गा
शत्रुनाशिनी
क्रोधित, सबला
संहारिणी स्वरूपा
कब सराही गई
नारी हो तो सीता सी
बनी जब दुर्गा
चर्चा का विषय बनी
समाज पचा नहीं पाया
उंगली उठी और उठती रही।
सीता कब चर्चित हुई
प्रशंसनीय , सहनशील
घुट-घुट कर जीने वाली
जब खत्म हो गई,
बेचारी के विशेषण से विभूषित हो
अपना इतिहास दफन कर गई।
समाज पुरूष रचित औ'
नारी जीवन उसकी इच्छा के अधीन,
स्वयं नारी भी
सीता औ' दुर्गा के स्वरूप को
पहचान कर भी
अनजान बनी जीती रहती है
पुरूष छत्रछाया में मंद मंद विष पीती रहती है।

इस कविता को पहला पुरस्कार मिला. पुरस्कार में पहली बार पुस्तकों को देनेका निर्णय लि या गया था और पुरस्कार में मुझे हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला 'और कमलेश्वर की 'कितने पाकिस्तान ' मिली थी.

फिर हमारे जजों में से एक ने मेरे से पूछा की आप यहाँ कबसे है? मैंने बताया की 18 साल से तो बड़े आश्चर्य से कहा - 'आपको पहलेदेखा नहीं कभी?' वाकई नहीं देखा होगा क्योंकि मेरी परिधि मेरे अपने कमरेसे अधिक कहीं नहीं होती है.

दूसरे दिन मेरे साथ काम करने वाले लोगों ने बताया की कल तो बसों मेंआपकी ही चर्चा हो रही थी कि क्या कविता पढी? इस तरह से मुझे आई आई टी मेंपहली बार पहचान मिली और इसका श्रेय मैं अपनी सहकर्मी या कहिये आत्मीय नीलमत्रिपाठी को ही देती हूँ. मुझे दूसरे वर्ष भी कविता पाठ में पुरस्कारमिला . लेकिन उसके बाद मैंने भाग लेना बंद कर दिया क्योंकि एक दिन मैंने बसस्टॉप पर सुना कि जब तक ये रहेंगी कविता का पुरस्कार नहीं मिलने वाला.हो सकता है कि मुझे सुना कर रही हों वे, लेकिन मैंने फिर जाना बंद करदिया.

मैंनेट से जुड़ कर भी ब्लॉग से परिचित न थी . ऑरकुट पर ब्लॉग का विकल्पदेखती और किसी किसी के प्रोफाइल में उसको देखती तो मेरी कुछ समझ नहीं आताथा. फिर एक दिन कमांड के सहारे सहारे मैंने 'पहगृह ' नाम से अपना ब्लॉगबना लिया . फिर वह कहीं खो गया. मैंने उसको खोजने की बहुत कोशिश की लेकिनमिला नहीं. और मैं भी उसको भूल गयी अपने काम में व्यस्त हो गयी. कई महीनेबाद फिर सोचा कि चलो दूसरा ब्लॉग बना लें फिर देखें कि इसमें कैसे काम कियाजाता है? दूसरा बनाने चली तो जैसे ही ईमेल ID डाला पहगृहभी मिल गया.बस बना लिया था उसमें डाला कुछ भी नहीं.

इसके बाद मुझे मिली 'रश्मि रवीजा' हम ब्लॉग केसहारे नहीं बल्कि और स्रोतों से मिले. वह बहुत अच्छी चित्रकार और अब ब्लॉगरभी है. जब हम मिले थे तब वह ब्लॉगर नहीं बनी थी. उसकी कहानियां रेडिओ परप्रसारित होती थी. फिर उसने ब्लॉग बनाया और उसके ब्लॉगबनाने से उसका तोहुआ मेरा भी बहुत फायदा हुआ कि ब्लॉग के लिए कैसे कैसे रास्तों से गुजरतेहुए हम सबके संपर्क में आ सकते हैं ये उसी ने सिखाया. कैसे ब्लोग्वानी औरचिट्ठाजगत में अपनी पोस्ट को दिखाना है ये सारे गुर उसी ने सिखाये हैं. वहमेरी छोटी गुरु है. उसने मेरा परिचय वंदना दुबे अवस्थी से कराया और बात कीतो पता चला की हम लोग रिश्तेदार हैं. चौंकिए मत कहाँ हम कायस्थ और कहाँ वहब्राह्मण फिर रिश्तेदारी का क्या सवाल ? सवाल है - हमारी कस्बाईसंस्कृति में रिश्तेदार सिर्फ रक्त सम्बन्धी ही नहीं होते बल्कि गाँव औरपड़ोस के लोग भी रिश्तेदार होते हैं और हमारे कुछ ऐसे रिश्ते हैं कि हमरिश्तेदार ही हैं.

रश्मि के प्रयास से मेरा ब्लॉग जगत में दायरा और समर्पण कि अवधि कुछ बढ़ी. उसने कई लोगों से मेरा परिचय कराया. मुझे अपने काम के कारण समय काम ही मिलपाता है इसलिए लेखन के बाद और ब्लॉग पर जाना कम ही संभव हो पाता है लेकिनमैंने अपनी सखियों से अनुरोध किया है कि अच्छी अच्छी पोस्ट की लिंक मुझेभेज दिया करें ताकि पढ़ सकूं. इस कार्य के लिए मैं सबकी शुक्रगुजार हूँ किमुझे लिंक भेज देती हैं. ब्लॉग्गिंग के कुछ गुर मैं संगीता स्वरूप, वंदनागुप्ता से भी सीखे क्योंकि मैं तो बिल्कुल अनाड़ी हूँ.

फिर तो मुझे और भी ब्लॉग के आमंत्रण मिले औरमैं उनमें सम्मिलित हो गयी और अब तो इसमें मेरी सक्रियता बढ़ गयी है. ऑफिसमें बैठ कर डग्गामारी कर लेती हूँ. जब सब लोग चाय पीने और लंच में अपनासमय निकल रहे होते हैं तब मैं अपनी ब्लॉग्गिंग में लगी होती हूँ. अब तोऑफिस आने के बाद सबसे पहले मेल चैक की और सबके कमेन्ट पढ़े और फिर अपनाकाम. समय निकल कर कमेन्ट का जबाव दे देती हूँ।

इतना करते करते लेखन बहुत आगे चलता चला गया। कई साहित्यिक समूहों और मंचोंसे रिश्ते बने अनुसार उनमें मेरी सहभागिता बनी रहती है।

रेखा श्रीवास्तव की कविताएँ

ओ गांधारी अब तो जागो !

ओ गांधारी अब तो जागो !
ओ गांधारी
अब तो जागो,
जानबूझ कर
मत बाँधो आँखों पर पट्टी,
सच को अब देखने का
साहस करना होगा।
कुछ करना होगा,
सिर्फ गला फाड़कर चीखने से
आँख बंद कर चिल्लाने से
मानव नहीं बन जाते है ।
ओ गाँधारी !
अपनी आँखों की पट्टी
खोलने का
अब वक्त आ गया है।
दुःशासन को नहीं
अब
जन्म देना अर्जुन को।
अब अनुगमन का नहीं,
अग्रगमन के लिए तैयार हो
अपने घर के लाड़लों को
किसी शकुनि के हाथ में नहीं,
अपने साथ ले आगे चलना होगा।
भाइयों से रार नहीं
प्रेम करना ,
द्रौपदी की बेइज्जती नहीं,
इज़्ज़त करना सिखाना होगा।
जबान की तलवारें नहीं,
वाणी पर अंकुश और अधिकारों की
मर्यादा सिखानी होगी।
अब तुम्हें गांधारी नहीं
बल्कि कुंती बनना होगा।
पांडव जैसे
अपने पुत्रों को
इस देश की मिट्टी की गरिमा से
सज्ज करने के लिए,
सिर्फ तुम्हारे और तुम्हारे जैसा हो सकता है।
सत्ता के दीवाने या हवस का मालिकाना हक
अहम से सराबोर
बेटों की अब जरूरत नहीं है।
तो तुम भी सीखो ,
अपने वंश के नाश की त्रासदी झेली है तुमने,
अब अपने लाडलों को
खुली आँखों से पालना है,
अपनी कोख को लज्जित होने से बचाना होगा।
तभी तो भविष्य में
इस धरती पर,
और किसी महाभारत की कहानियाँ
सुनने को न मिलेंगी।

तलाश!

आज बहुत दिन बाद
निकली हूँ खोज में
कहीं देखे हैं किसी ने,
मेरे शब्द खो गये,
दूसरे शब्दों में
हिरा गये कहीं।
खोजा मन के हर कोने में,
बाहर भी खोजा गहराई से,
सिर्फ वही नहीं
मेरे भाव भी गुम है
मेरे अंर्त से।
रचूँ क्या?
लिखूँ क्या?
कलम भटक रही है,
खोज में उनके
कोई तो बता दे कि
रचना क्या है?
इतनी विकृति दिख रही है,
विद्रूपता छाई है
जीवन के हर प्रहर में।
कहीं बिखरे बिखरे से घर हैं,
कहीं घर रह गये है,
ईंट गारे के मकान।
एक छत के नीचे
सब गूँगे जी रहे है।
बस आवाजों को तरसते कान
मंद रोशनी के बचे हैं।

सुनो मुझे कल को जीना है

सुनो मुझे कल को जीना है
कोई चलेगा क्या कल में?
मत चलो कोई,
फिर भी मुझे वापस जीना है,
गुजरे हुए जीवन के उन प्यारे लम्हों को,
क्या गुजरा, क्या खोया, क्या पाया?
सब को फिर मिलकर जीना है।
बचपन की अठखेलियाँ
भाई-बहन के वह झगड़े,
शीशम पर पड़ा हुआ झूला
सखियों संग मिलकर
मुझे फिर से झूलना है।
खेल में कब घड़ी लगी थी,
जी भरता कब था?
बंद द्वार को खटका कर,
जब घर आते थे,
फिर वह डाँट का कसैला सा शरबत पीना है,
मुझे फिर कल को जीना है।
गले लग सखियों के फिर,
मिलकर गुट्टे और कड़क्को
फिर से खेल सकूँ
अब कौन कहाँ जीता है?
फिर एक बार सभी संग
उस युग में जाकर
मुझे फिर कल को जीना है ।
कहाँ सभी होते थे अपने,
रखते थे अधिकार सभी ,
डर सिर्फ घरवालों का ही नहीं,
पड़ोसी भी सब चाचा भाई हुआ करते थे,
अधिकार सभी अपना सा रखते थे ,
मुझे उन्हीं दिन में जाना है,
मुझे फिर कल को जीना है।
आज नहीं है कोई अपना सा
सब की नजरें स्वार्थ भरी हैं,
कब छोड़ चल देंगे ?
इस जहर को अब न पीना है
मुझे फिर कल को जीना है।

एलेक्सा!

हाँ वह एलेक्सा है,
आज की नहीं
बल्कि वह तो वर्षों से है।
वह एलेक्सा पैदा नहीं हुई थी,
माँ की मुनिया,
बापू की दुलारी,
विदा हुई जब इस घर से,
तब पैदा हुई एलेक्सा।
और फिर वही बनी रही,
उसको किसी मशीन में नहीं
बल्कि मशीन ही बना दिया
और
वह एक जगह नहीं
जगह जगह दौड़ती रहती है।
एक नहीं कई थे आदेश देने वाले,
वह रोबोट नहीं थी,
वह आज की तरह न थी
तब उसका नाम कुछ भी होता था।
उसे लाया जाता साधिकार,
फिर वह एलेक्सा बना दी गई।
तारीफ देखिए सदियों बाद जब
नयी एलेक्सा आई तो
वह भी स्त्रीलिंग है
और उसका निर्माता पुरुष।
आज की एलेक्सा तो बगावत भी कर सकती है,
कल की तो बोलना भी नहीं जानती थी,
चुपचाप आदेश पूरा करती रहती।
आज भी हर दूसरे घर में
दो दो एलेक्सा मिल जायेंगी
ये उनकी नियति है,
चाहे हाड़-माँस की हो या मशीन
उसे सिर्फ आदेश मानना है
बगैर नानुकुर किए
ये एलेक्सा हर युग में रही है
और रहेगी।
नारी का दूसरा अवतार एलेक्सा है।

गमज़दा घर !

उस मकान से
कभी आतीं नहीं
ऐसी आवाजें
जिनमें खुशियों की हो खनखनाहट।
खामोश दर,
खामोश दीवारें,
बंद बंद खिड़कियाँ,
ओस से तर हुई छतें
शायद रोई हैं रात भर ।
कोई इंसान भी नहीं
हँसता यहाँ,
मुस्कानें रख दी हैं गिरवी।
उनके यहाँ
खुशियाँ ने भी
न आने की कसम खाई है।
शायद इसीलिए
हर तरफ मायूसी छाई है।

हवेली बनाम पीढ़ी !

हवेली बनाम पीढ़ी !

लोग कहते हैं ,
हवेलियां मजबूत होती हैं ,
एक पीढ़ी उसको बनाती है
तो
दूसरी पीढ़ी उसको सजाती है ।
ये मैंने भी देखा है ,
साथ ही देखा है -
बड़ी बड़ी हवेलियों को दरकते हुए ,
भले ही ईंटें न बिखरें ,
छतें न दरकें
फिर भी दीवारों में दरारें आ ही जाती हैं।
बनने लगती है,
नयी दीवारें आँगन में,
बाँटने को पीढ़ियों के अंतर को।
कोई भी हवेली अखण्ड नहीं होती है,
वो बरगद या पीपल नहीं होती,
जो शाख-दर-शाख चलती ही रहे।
बीज भले दूर दूर तक जाकर उग आयें
हवेलियाँ कहीं नहीं जाती है।
एक दिन ढह जाती हैं
और खण्डहर बन सदियों तक भले पड़ी रहें।

लोग कहते हैं ,
हवेलियां मजबूत होती हैं ,
एक पीढ़ी उसको बनाती है
तो
दूसरी पीढ़ी उसको सजाती है ।
ये मैंने भी देखा है ,
साथ ही देखा है -
बड़ी बड़ी हवेलियों को दरकते हुए ,
भले ही ईंटें न बिखरें ,
छतें न दरकें
फिर भी दीवारों में दरारें आ ही जाती हैं।
बनने लगती है,
नयी दीवारें आँगन में,
बाँटने को पीढ़ियों के अंतर को।
कोई भी हवेली अखण्ड नहीं होती है,
वो बरगद या पीपल नहीं होती,
जो शाख-दर-शाख चलती ही रहे।
बीज भले दूर दूर तक जाकर उग आयें
हवेलियाँ कहीं नहीं जाती है।
एक दिन ढह जाती हैं
और खण्डहर बन सदियों तक भले पड़ी रहें।

कुछ खो गया!

इस सफर में
कुछ खो गया, या छूट गया,
हर तरफ उँगली उठी -
'दोषी तुम हो,
ध्यान कहाँ रहता है?
कहाँ खोई रहती हो?
गाढ़ी कमाई का पैसा है।'
आँखें बंद किए,
मींच कर ओंठ,
आँसू घुटकती गले के नीचे,
रसोई में खड़ी रोटी सेंक रही थी।
पी गई, सब आरोप, कटाक्ष
जो छोटे और बड़ों ने दिए थे।
एक सवाल उठा जेहन में -
कभी सोचा है मैंने अपना क्या क्या खोया है?
अपनी बेबाक आवाज़ खोई है,
अन्याय के खिलाफ उठती हुई हुँकार खोई है,
वे शब्द खोए,
जिन पर पहरा लगा हुआ है,
अपना सच कहने का हौसला खोया है,
मेरा सच आग के हवाले हो गया,
सच का हुआ पोस्टमार्टम तो
कलम, कागज,शब्द खो गये,
तब भी नहीं पूछा जब -
माँ खो गई,
पापा खो गये,
भाई भी तो खो दिए।
नहीं पूछा किसी ने कि - क्या खो दिया?
मत रो सब मौजूद है।
वो दिखा नहीं जो खोया मैंने,
अपना देख स्यापा मना रहे हैं।
उसको दोषी बना रहे हैं,
जिसने अपराध किया ही नहीं।
अपराधी खुद उँगली उठा रहे हैं।
बेगुनाह पर तोहमत लगा रहे हैं।

ये साठ साला औरतें !

ये कल की साठ साला औरतें,
घर तक ही सीमित रहीं,
बहुत हुआ तो
मंदिर, कीर्तन और जगराते में,
पहन कर हल्के रंग की साड़ी,
चली जाती थीं।
चटक-मटक अब कहाँ शोभा देगा उन्हें
और कभी कभी तो उनकी
आने-जाने की कुछ साड़ियाँ वर्षों तक
चलती रहती थी,
कहीं गईं तो पहन लिया
और
आकर उतार कर बक्से में धर दिया।
ये कल की साठ साला औरतें -
हाथ पकड़ कर पोते-पोतियों के
पड़ोस में जाकर बैठ आती,
कुछ अपने मन की कह कर,
कुछ उनके मन की सुन आती।
वही तो हमराज होती थीं।
पति के साथ बैठकर बतियाने का रिवाज भी ही कम था,
जरूरत पर बतिया लो,
पैसे माँग लो या
कहीं बुलावे में जाना है, की सूचना दे दो।
ये थी कल की साठ साला औरतें।
और
आज की साठ साला औरतें-
लगती ही नहीं है कि साठ साला हैं,
आज तो जिंदगी शुरू ही अब होती है,
रिटायरमेंट तक दौड़ते भागते,
घर बनाते, बच्चों के भविष्य को सजाते निकल जाता है।
कब सजने का सोच पाईं,
अब किटी पार्टी का समय आया है,
अब सखी समूह में घूमने का समय आया है,
नहीं बैठती हैं, अब बच्चों को लेकर पार्क में,
खुद योग में डूब कर स्वस्थ रहना सीख जाती हैं।
तिरस्कार नयी पीढ़ी का क्यों सहें?
अपने को अपनी उम्र में ढाल लेती हैं।
अपने गुणों को डाल कर नेट पर समय बिताती हैं,
अपने गुणों से ही पहचान बनाती हैं।
जिंदगी जिओ जब तक,
जिंदादिली से जिओ ,
जो संचित अनुभव है, बाँटो और खर्च करो,
पुरानी तोड़कर अवधारणा फैल रहीं है दुनिया में।
ये साठ साला औरतें लिख रहीं इतिहास नया।
ये आज की साठ साला औरतें,
युवाओं से भी युवा है।
जीना हमें भी आता है,
कहकर मुँह चिढ़ा रहीं हैं नयी पीढ़ी को,
वह पहनतीं हैं जो सुख देता है,
सुर्ख़ रंगों में सजे परिधान संजोती हैं,
लेकिन अब भी लोगों की आँखों में
किरकिरी की तरह

शहर समता - ब्यूरो प्रमुख

देहरादून ब्यूरो - निशा अतुल्य,
सतना ब्यूरो - डॉ ऊषा सक्सेना,
रीवां ब्यूरो - साधना तिवारी,
लखनऊ ब्यूरो - मंजु सक्सेना,
जबलपुर ब्यूरो - शैली सेठ,
लुधियाना ब्यूरो - श्रद्धा शुक्ला,
जौनपुर ब्यूरो - डॉ मधु पाठक,
हैदराबाद ब्यूरो -रीना प्रदीप कुमार,
भिलाई ब्यूरो - संध्या चंदेल,
गोरखपुर ब्यूरो - चित्रा श्रीवास्तव,
दिल्ली ब्यूरो - अफरोज़ अजीज,
तिनसुकिया गोलाघाट ब्यूरो - रंजना बिनानी,
प्रयागराज ब्यूरो - डॉ आकांक्षा पाल,
भीलवाड़ा ब्यूरो - डॉ राजमति पोखरना,
इंदौर ब्यूरो - आशा जाकड़,
शिलांग ब्यूरो - डॉ अनीता पंडा,
बिलासपुर ब्यूरो - स्मृति मिश्रा 'रीति,
रायपुर ब्यूरो - सीमा निगम,
कानपुर ब्यूरो - सीमा वर्णिका,
भोपाल ब्यूरो - दीपमाला तिवारी,
दमोह ब्यूरो- भावना शिवहरे,
मण्डला ब्यूरो - डॉ अर्चना जैन
बनारस ब्यूरो - सुनीता जौहरी,
आरा ब्यूरो - सिम्पल सिंह,
बिजनौर ब्यूरो - ऋतुबाला रस्तोगी,
पठानकोट ब्यूरो - क्षमा लाल गुप्ता,
सप्तरी नेपाल ब्यूरो - करुणा झा,
धम्तरी ब्यूरो - कामिनी कौशिक,
रामपुर ब्यूरो - चंद्रिका कुमार 'चांदनी',,
मुरादाबाद ब्यूरो - अभिव्यक्ति सिन्हा,
कटनी ब्यूरो - मीरा भार्गव,
पटना ब्यूरो - अंजू भारती

संस्थापक

स्व0 कन्हैया लाल, स्व0 साधना श्रीवास्तव

सम्पादक
उमेश चन्द्र श्रीवास्तव
आरएनआई नं0 UPHIN/2001/3996

उप संपादक
डा0 अरूण कुमार मिश्रा
रचना सक्सेना

Mo. 9005239332
Email-shaharsamta@gmail.com

स्वत्वाधिकारी/मुद्रक/प्रकाशक/सम्पादक उमेश चन्द्र श्रीवास्तव द्वारा इण्डियन प्रेस (पलि.) प्रा0लि0, 36 पन्ना लाल रोड, इलाहाबाद से मुद्रित कराकर 289/238ए, (अनन्त भवन) कर्नलगंज, इलाहाबाद से प्रकाशित।

इस अंक के प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं सम्पादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत उत्तरदायी तथा समस्त विवादों का निपटारा इलाहाबाद न्यायालय में ही होगा।

रेखा श्रीवास्तव की कविताएँ

खटक जाती है इनकी जिंदादिली
क्योंकि
आज की साठ साला औरतें
सारी बेड़ियाँ तोड़ना चाहती है ।

मैं क्या हूँ?

मैं क्या हूँ?
मैं भाव हूँ
उमड़ता हूँ तो छा जाता हूँ
काले बादलों सा,
बरसता हूँ तो भी छा जाता हूँ
कागजों पर स्याही के संग
कलम पर सवार होकर
देखा होगा आपने?

पीड़ा भी हूँ,
और उल्लास भी
रुदन हूँ औ' हास भी,
अपना भी हूँ औ' दूसरे की भी
बस अपना समझ जिया उसको,
गरल बन पिया उसको,
जीवन में कुछ नया कर गया,
देखा होगा आपने?

मैं शब्द हूँ,
उमड़ता हूँ दिमाग में
कभी कल्पना से,
कभी साक्षी बनने से
कभी तो भोक्ता भी होता हूँ,
ढल जाता हूँ -
कभी कविता में,
कभी कहानी में
उतर कर कागजों पर रच जाता हूँ।
देखा होगा आपने?

बस इसीलिए तो हर रूप में स्वीकृति हूँ,
पीड़ा, भाव और शब्दों की अनुकृति हूँ।
समय की बात!

उम्र खर्च हो गयी
बिना सोचे-समझे,
बहुत पैसे कमाने के लिए।
धनी आज बहुत हैं,
रखने की जगह नहीं,
बस चुप हो गया।
वक्त ही नहीं मिला संभालें,
जैसे भी थे, कुछ तो करीब थे।
कम अमीर थे,
लेकिन दिल से अनमोल थे,
तब शायद हम खुशनसीब थे।

पैमाना ख़ुशी का !

पैमाना ख़ुशी का !
जीवन में
खुशियों का पैमाना
अपना अपना होता है ।
यह वक्त भी
तय करता है ,
और हालात भी ।
दुधमुँहे को छोड़
माँ काम पर जाती है ।
उस नन्हे की भूख
खोजती है अपनी माँ को ,
अचानक माँ को पाकर
जो खुशी उसे मिली
बयान नहीं उसका ।
तपती सड़क पर
रिक्शा खींचते हुए को
कहीं दिख जाये
जलधारा
उसकी आँखों की चमक
उसको मिल जाती
खींचने की नयी शक्ति
जो खुशी उसे मिली
बयान नहीं उसका ।
माँ का दुलारा / दुलारी
जब आते हैं
छुट्टियों में
चाहे वे कितने ही बड़े हों
जो खुशी माँ की होगी
बयान नहीं उसका ।
आफिस के ए सी चैंबर में
आराम से बैठे
जब पाते हैं अपना हिस्सा
कितना भी कमा रहे हों
इसके बिना बरकत कहाँ ?
उस मन की खुशी
बयान नहीं उसका ।
कहाँ तक बयान करें
ये खुशी के पल
बाजार में नहीं मिलते
खरीद कुछ भी लें
लेकिन ये
उपहार में नहीं मिलते ।

कल को जीना है।

सुनो मुझे कल को जीना है
कोई चलेगा क्या कल में?
मत चलो कोई,
फिर भी मुझे वापस जीना है,
गुजरे हुए जीवन के उन प्यारे लम्हों को,
क्या गुजरा, क्या खोया, क्या पाया?
सब को फिर मिलकर जीना है।
बचपन की अठखेलियाँ
भाई-बहन के वह झगड़े,
शीशम पर पड़ा हुआ झूला
सखियों संग मिलकर
मुझे फिर से झूलना है।
खेल में कब घड़ी लगी थी,
जी भरता कब था?
बंद द्वार को खटका कर,
जब घर आते थे,
फिर वह डाँट का कसैला सा शरबत पीना है,
मुझे फिर कल को जीना है।
गले लग सखियों के फिर,
मिलकर गुट्टे और कड़क्को
फिर से खेल सकूँ
अब कौन कहाँ जीता है?
फिर एक बार सभी संग
उस युग में जाकर
मुझे फिर कल को जीना है ।
कहाँ सभी होते थे अपने,
रखते थे अधिकार सभी ,
डर सिर्फ घरवालों का ही नहीं,
पड़ोसी भी सब चाचा भाई हुआ करते थे,
अधिकार सभी अपना सा रखते थे ,
मुझे उन्हीं दिन में जाना है,
मुझे फिर कल को जीना है।
आज नहीं है कोई अपना सा
सब की नजरें स्वार्थ भरी हैं,
कब छोड़ चल देंगे ?
इस जहर को अब न पीना है
मुझे फिर कल को जीना है।

कितना बदल गया संसार !

दर वही,
द्वार वही,
बाड़ी भी वही
बस कुछ दीवारें बढ़ गईं।

कुछ दरवाजे,
कुछ खिड़कियाँ,
पत्थरों औ' रोशनी की
चमक बस कुछ और बढ़ गई।

आँगन वही,
चेहरे मोहरे वही,
जमीन भी वही
बसमन कीदूरियाँ बढ़ गईं।

जीवन वही,
रिश्ते भी वही,
रगों में बहता खून वही,
बस ज़िन्दगी में तल्खियाँ बढ़ गईं।

आस लिए बैठे हैं !

वक्त गुजरता जा रहा है तूफान की तरह तेजी से ,
हम पोटली थामे यादों की आज भी लिए बैठे हैं ।

दौड़ नहीं पाये संग संग उसके तो पीछे रह गये ,
थाम कर बीते दिन पुराने कलैण्डर से लिए बैठे हैं ।

पाँव थक गये थे दौड़ना सिखाते सिखाते उनको ,
आयेंगे वो पलट कर साथ ले जाने आस लिए बैठे हैं।

हमारी तो ये धरोहर है जीवन की सुनहरे पलों की ,
आये तो जलाकर चल दिये हम राख लिए बैठे हैं ।

5 लघुकथाएं

सौदा

मथुर के पास बार- बार पापा के बीमार होने के फोन जा रहे थे। औरवह धर्म संकट में फँसा था। क्योंकि ससुर जी का हार्ट का ऑपरेशन हुआ है औरइकलौती बेटी और दामाद उनको छोड़कर कैसे जायें ? वह बार- बार कह रहा था किकोशिश करता हूँ ।

आज तो उसने इंकार कर दिया कि मैं मजबूर हूँ। ससुर को इस हालत में छोड़कर नहीं आ सकता।

मोहन ने मथुर की शादी के लिए आये ढेर से प्रस्तावों की हैसियतको तौल कर यह बहू चुनी थी। उनकी पत्नी भी पाँच भाइयों में अकेली बहन थी तोखूब दुहा जीवन भर ।

बम्बई वाली मिनी उन्हें पसंद आयी । इकलौती बेटी वहीं अलग से फ्लैटभी दे रहे थे । उनको पचास लाख पहले दे दिए सो उनका बढ़िया बंगला तैयार होगया । पर ये भूल गये थे कि ये तो उनके सीए बेटे की कीमत थी । बेटा तो बिकगया ।

पछतावे के साथ ही दोनों कोरों से आँसू बह निकले । पत्नी की ओर देख कर बोले - 'मथुर' और सिर एक ओर ढलक गया ।

खेप !

'हाँ राम भरोसे नई खेप कब तक मिलेगी? बाहर वाल ों का दबाव बढ़ता जा रहा है।'

'और कुछ दिन, कई जगह एजेंट भेजे हैं ,कहीं ना कहीं से आएगी।'

' कोई झंझट नहीं चाहता मैं, डील हमारी तुमसे होगी आगे वालों को तुम देख लेना।'

'ठीक है।'

यह खेप मौरंग, रेत, सीमेंट या ईंटों कीनहीं थी बल्कि जीते जागते बच्चों की थी। गरीब के बच्चों को काम और दाम कालालच दिखाकर दूरदराज से लाया जाता था। उन्हीं में लड़कियाँ भी शामिल होतीथीं। उम्र के अनुसार काम लिया जाता था। भीख मँगवाना, जिस्मफरोसी, बालश्रमऔर कबूतरबाजी तक की जाती थी।

अभी अभी ऑफिस पहुंचा ही था कि मौसमी का फोन आया - 'सरस पार्क में खेलने गया था वहां से वापस नहीं आया है।'

' उसकी आया क्या कर रही थी?'

'वहीं थी लेकिन किसी से बात कर रही थी और उसी में ही हो गया।'

'मैं आता हूं।'

जब घर पहुँचा था तो मौसमी बेहाल थी। एसपी और डीएसपी से लेकर उसने बच्चेको खोजने के लिए सारे महकमे में हड़कम्प मचा दिया। अपने आदमियों को दौड़ायाऔर खुद गाड़ी लेकर निकल गया ।

थोड़ी दूर पहुंचा था कि उसके पास एक फोन आया - 'अपने बेटे को खोज रहे हो।'

'हाँ, मिला क्या?'

' मेरे पास है एक करोड़ फिरौती चाहिए।'

'क्या दिमाग खराब है? मेरे बेटे को अगवा किया है, मैं छोड़ूँगा नहीं।'

' तो चुपचाप पैसे दे दे बहुत कमा चुका तू।'

'कुछ कम कर, इतना मेरे पास नहीं है।'

' इससे ज्यादा वसूलता है बच्चों का, जो भीख माँगते है और लड़कियों को देहव्यापार में धकेल देता है और अब तेरे बेटे का भी यही हश्र होगा।'

'चुप करो मैं तुम्हें कुछ नहीं करने दूँगा।'

' क्यों? क्या सिर्फ तुम ही कबूतरबाजी कर सकते हो? कहाँ जाओगे रिपोर्टकरने पुलिस के पास तो तुम्हारा कच्चा चिट्ठा पहले से पहुँच जाएगा, इसलिएतू चुपचाप मुझे वह दे दे, जो मैं माँग रहा हूँ, नहीं तो बेटा भी नहींमिलेगा।'

तभी दूसरा फोन बजा और आवाज आई - 'खेप आ चुकी है, कहाँ पहुँचाना है ?'

'किसी और को दे दे, कहीं मेरा बेटा भी किसी और खेप में शामिल न कर दिया जाय।'

वह पागलों की तरह अपनी गाड़ी दौड़ा रहा था। मन में सोचता जा रहा था - 'अब कोई खेप नहीं बस भगवान मेरे बच्चे को वापस दिला दे।'

वह स्टेयरिंग पर सिर रख कर फफक फफक कर रोने ल गा ।

एक अलग पार्टी !

सुमन ने रवि की ओर मुखातिब होकर कहा - 'रवि शशांक की कोई मेल आई है क्या ?'

'हाँ आई है न ,आज शाम पार्टी की। '

इन दोनों की बात सुनकर सब अपने केबिन से उठ उठ कर बोलउठे - 'हाँ सबको बुलाया है , पूरा सेक्शन ही इन्वाइटिड है। '

'अच्छा अच्छा अब चर्चा बंद और इस विषय में बात लंच टाइम में करेंगे।' इंचार्ज ने सबको शांत करते हुए कहा।

सब अपने अपने काम में लग गए। किसी का सबको पार्टी में बुलाना कोई नई बात है क्या ? सब करते ही रहते हैं।

इस बार तो बड़ी चर्चा हो रही है , खुसपुस बराबर जारी है , बराबर वालेकेबिन से धीरे धीरे चर्चा चल रही थी। विषय क्या था बस यही कि कल ही कोर्टसे स्मृति और शशांक के बीच डाइवोर्स हुआ है। आपसी सहमति से ही हुआ है औरदोनों ही एक ही ऑफिस में लेकिन अलग अल ग सेक्शन में है। दोनों में किसी केमन में कोई मलाल नहीं और मिलकर पार्टी देने का प्लान भी बहुत ही अलग तरीकेसे है।

लंच के समय सब लोग जब हाल में इकट्ठे हुए तो सब अपने-अपने तरीके से विचार व्यक्त कर रहे थे।

- 'यार लोग तो मिलने से कतराते हैं और ऑफिस में भी आकर मुंह
छिपाते हैं और ये तो पार्टी देने का प्लान बनाये बैठे हैं। '

'ये तो लिब इन जैसा हो गया कि नहीं पटी तो रास्ते अल ग अलग ,
इसमें बस कोर्ट से जाकर मुहर लगवा ली।'

'पर यार ये बता कि इसमें हम क्या लेकर जायेगे और किसके लिए ?'

'मेरे हिसाब से तो को चार बुके बनवा लेते हैं और हम भी ग्रुप में
जाकर एक एक करके दोनों को ही पकड़ा देंगे। बधाई भी दे देंगे।'

'बधाई किस बात की ?'

'जिस बात की हमें पार्टी दी जा रही है। '

'हाँ डाइवोर्स पार्टी ,ये तो एक नया ही मौका बन गया, जिसे
सेलिब्रेट करने की बात किसी ने सोची ही नहीं आजतक। '

शाम सब जब पामेला पार्टी लॉन पहुँचे तो जैसे तीन.साल पहले इन दोनों शादी की पार्टी दी थी वैसे ही पूरी पार्टी रखी गयी थी।
एकपार्टी साथ होने की और दूसरी अलग होने की। कितना अजीब हो गयी है येसोसाइटी कि इसके रीति रिवाज भी बदल गए हैं। लोग समझ नहीं पा रहे थे किउन्हें बधाई देने के लिए किन शब्दों का प्रयोग करें। किस तरह से पेश आयें।

अपना हक !

सरोज अकेले रहते रहते बुरी तरह त्रस्त हो चुकी थी, सिर्फ बेटियां ही उसकी आशा का केंद्र बिंदु थीं। आधी रात को उसने दर्द सेतड़पते हुए शरीर छोड़ दिया। उसके पास बेटी ही थी।

पत्नी के न रहने की खबर सुनकर सोचा कि पति होनेका फर्ज पूरा नहीं किया चलो अंतिम समय दुनिया के दिखावे के लिए ही चलाजाय, जब तक देव आया तैयारी हो चुकी थी।

'ऋतु इनका पूरा श्रृंगार करवा दो, सधवा औरतों कीअर्थी ऐसे नहीं उठाई जाती है। सिन्दूर कहाँ है ?लाओ मैं इसकी माँग भर दूँ। '

'रहने दीजिये ,अब चली गयीं और माँग भरना तो उन्होंने वर्षों पहले छोड़ दिया था , फिर ये दिखावा क्यों ?'

'मेरे रहते तो ऐसे नहीं ही जायेगी।'

'वह जा कहाँ रहीं हैं ?'

'अंत्येष्टि के लिए, वह तो मेरे होते कोई नहीं कर सकता।'

'वह अपनी देह दान कर चुकी हैं ,अभी मेडिकल कॉलेज की टीम आती ही होगी। '

'बगैर मेरे पूछे ये निर्णय लिया कैसे गया ?'

'जैसे आपने उनके रहते दूसरा घर बसने का लिया था।'

सौदा

मथुर के पास बार- बार पापा के बीमार होने के फोन जा रहे थे। औरवह धर्म संकट में फँसा था। क्योंकि ससुर जी का हार्ट का ऑपरेशन हुआ है औरइकल ौती बेटी और दामाद उनको छोड़कर कैसे जायें ? वह बार- बार कह रहा था किकोशिश करता हूँ ।

आज तो उसने इंकार कर दिया कि मैं मजबूर हूँ। ससुर को इस हालत में छोड़कर नहीं आ सकता।

मोहन ने मथुर की शादी के लिए आये ढेर से प्रस्तावों की हैसियतको तौल कर यह बहू चुनी थी। उनकी पत्नी भी पाँच भाइयों में अकेली बहन थी तोखूब दुहा जीवन भर ।

बम्बई वाली मिनी उन्हें पसंद आयी । इकलौती बेटी वहीं अलग से फ्लैटभी दे रहे थे । उनको पचास लाख पहले दे दिए सो उनका बढ़िया बंगला तैयार होगया । पर ये भूल गये थे कि ये तो उनके सीए बेटे की कीमत थी । बेटा तो बिकगया ।

पछतावे के साथ ही दोनों कोरों से आँसू बह निकले । पत्नी की ओर देख कर बोले - 'मथुर' और सिर एक ओर ढलक गया ।